Online at: https://researchtrendsjournal.com
ISSN No: 2584-282X
Indexed Journal
Peer Reviewed Journal

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 3; Issue 4; 2025; Page No. 26-30

Received: 01-04-2025
Accepted: 04-06-2025

उत्तराखण्ड पर्वतीय क्षेत्रों में विकास एवं पलायन का एक अध्ययन

[1]डॉ. जगमोहन सिंह नेगी, [2]डॉ. विनीता नेगी

[1]सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, चमोली, उत्तराखंड, भारत
[2]सहायक प्रोफेसर, संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, चमोली, उत्तराखंड, भारत

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.15879824

Corresponding Author: डॉ. जगमोहन सिंह नेगी

सारांश

यह शोध पत्र उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में विकास और पलायन के परस्पर सम्बन्ध का विश्लेषण करता है। शोध में यह प्रतिपादित किया गया है कि विकास की प्रक्रिया यदि असंतुलित और क्षेत्रीय असमानता से युक्त हो, तो यह पलायन जैसी सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। उत्तराखण्ड में राज्य गठन के पश्चात भी पर्वतीय क्षेत्रों में विकास की धीमी गति के कारण यहाँ से बड़े पैमाने पर पलायन हुआ है। पलायन के प्रमुख कारणों में रोजगार की कमी, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव, कृषि की संकटग्रस्त स्थिति तथा आधारभूत संरचना का अपर्याप्त विकास सम्मिलित हैं। यह शोध न केवल पलायन के कारणों और प्रभावों का विश्लेषण करता है, बल्कि इसके समाधान हेतु विकेन्द्रीकृत, समावेशी और सतत विकास की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इसके साथ ही यह शोध यह भी स्पष्ट करता है कि यदि पर्वतीय क्षेत्रों को विकास की मुख्यधारा से नहीं जोड़ा गया, तो यह प्रवृत्ति सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिकीय और सामरिक दृष्टि से दीर्घकालिक संकट का कारण बन सकती है। अतः शोध का निष्कर्ष यह है कि ग्राम–आधारित, जन–केंद्रित, पर्यावरण–संवेदनशील और युवा–उन्मुख विकास नीतियाँ ही इस संकट का समाधान प्रस्तुत कर सकती हैं।

मूलशब्दः उत्तराखण्ड, विकास, पलायन, पर्वतीय क्षेत्र, समावेशी विकास, सामाजिक विषमता, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, स्वरोजगार, प्राकृतिक आपदा, सीमा सुरक्षा, सतत विकास, विकेन्द्रीकरण, सामाजिक न्याय, युवा प्रवास, नीति–निर्माण, पर्यावरणीय संतुलन

प्रस्तावना

विकास परिवर्तन को अंकित करता है। आधुनिक युग में अनेक संदर्भों में विकास शब्द का प्रयोग हो रहा है। औद्योगीकरण, आर्थिक सुधार, राजनीतिक संस्थाओं की सुदृढ़ता, संचार क्रांति, तकनीकि और सामाजिक संरचनाओं में बदलाव विकास का पर्याय हैं। विकास को मुख्य रूप से उत्पादन, आय, उद्योग और आधारभूत ढ़ांचे के निर्माण, मानवीय और सामाजिक समावेशन से भी जोड़ा जाता है। विकास का लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यतम क्षमताओं को विस्तार देने का अवसर प्रदान करना है। ऐसा वातावरण निर्मित करना, जिसमें हर कोई गरिमापूर्ण जीवन जी सके। विकास के सन्दर्भ में विचारकों ने पृथक–पृथक मत प्रकट किया है। एल.एफ. सीनियल ने विकास के बारे में अवगत कराया कि 'संरचनात्मक परिवर्तन, औद्योगीकरण, और नवीन संस्थाओं का निर्माण करना ही विकास है।' एल. पॉकॉक ने 'विकास को केवल आर्थिक ही नहीं माना, बल्कि यह संवेदनशील परिवर्तन की एक सतत प्रक्रिया है।' प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने 'विकास को मानव स्वतंत्रता का विस्तार बताया है।' महात्मा गांधीजी ने 'आत्मनिर्भरता और विकेन्द्रीकृत के रूप में विकास को स्पष्ट किया है।' जवाहर लाल नेहरू ने 'औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति को विकास कहा है।' एस.एफ. नील और एस. पोएस्क ने 'विकास को केवल परिवर्तन नहीं, बल्कि समाज के अंतिम उद्देश्यों की पूर्ति तक की प्रक्रिया को कहा है।'

विकास सामान्यतः प्रगति, उन्नति, संवृद्धि और बेहतर जीवन की दिशा में अग्रसर होने की प्रक्रिया है। उत्पादन, संस्थाओं की संख्या और संचार माध्यमों में वृद्धि को विकास माना गया है। विकास वह प्रक्रिया है जिससे समाज में समान अवसर और सहभागिता बढ़ती है। नए राष्ट्रों की स्थापना और समस्याओं के समाधान का प्रयास विकास की प्रक्रिया का हिस्सा है। पर्यावरणविद् विकास को ही केवल आर्थिक लाभ से नहीं जोड़ते, वे सतत् एवं समावेशी विकास की बात भी करते हैं।

पूर्व में विकास केवल आर्थिक उन्नति के साथ–साथ सड़क, पुल, अस्पताल, उद्योग आदि बनाने तक सीमित रहा। लेकिन इससे

केवल कुछ ही वर्ग लाभान्वित होते हैं, जबकि बाकी लोग पीछे रह जाते हैं। इसलिए अब विकास की परिभाषा में बदलाव किया गया है, जिसमें हर वर्ग, विशेषकर वंचित तबके की भागीदारी और लाभ सुनिश्चित है। विकास कार्य केवल शहरों में नहीं, बल्कि गांवों तक पहुंचे। मैदानी भागों तक सीमित न रहे, बल्कि पहाड़ी भू–भाग तक भी पहुंचे। केवल अमीरों के लिए नहीं, बल्कि गरीब, पिछड़े, आदिवासी, महिलाओं और युवाओं के लिए भी उपयोगी हो सके साथ ही मानव और पर्यावरण दोनों को केंद्र में रख कर उसके लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

आज भारत की सामाजिक–आर्थिक वास्तविकताओं को देखते हुए केवल नेहरू या गांधी मॉडल अपनाना यथोचित नहीं है। दोनों मॉडलों के संतुलन की आवश्यकता है। नेहरू मॉडल की औद्योगिक शक्ति और आत्मनिर्भरता के विजन की जरूरत आज भी है। गांधीवादी मॉडल की विकेंद्रीकृत, रोजगार–उन्मुख, पर्यावरण–संवेदनशील सोच वर्तमान जलवायु संकट के युग में अत्यंत प्रासंगिक है। भारत की नियोजन प्रणाली में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद विकास की अवधारणा में बड़ा परिवर्तन आया और भारत विश्व में विकास की ओर अग्रसर हुआ। किन्तु भारत का यह विकास मैदानी भू–खण्ड तक ही सीमित रहा। पहाड़ी भू–खण्ड की ओर विकास की लहर पहुंच नहीं पायी जिससे भारतीय पहाड़ी भू–भाग के लोगों ने मैदानी भू–भाग की ओर पलायन करना आरम्भ किया। इसी का प्रभाव उत्तराखण्ड राज्य निर्माण के बाद उत्तराखण्ड पर भी पड़ा। यहां की सरकारों ने भी राज्य निर्माण के बाद से विकास योजनाओं को इस प्रकार से निर्मित किया कि जो मैदानी भूभाग को लाभकारी सिद्ध हुआ। जिससे पहाड़ी भू–भाग राज्य निर्माण के बाद भी विकास की गति में उपेक्षित रहा। परिणामतः यहां के लोगों ने मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन आरम्भ किया। अतः विकास और पलायन के इसी आपसी सम्बन्ध को मध्य नजर रखते हुए शोधार्थी ने उक्त विषय को अध्ययन के लिए चयन किया है और अध्ययन इकाई के रूप में उत्तराखण्ड राज्य के पहाड़ी क्षेत्र का चयन किया है और स्वयं लेखक भी पहाड़ी भूभाग से सम्बन्धित है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय

हिमालय अतीत काल से ही मानवीय जिज्ञासा एवम् प्रेरणा का स्रोत रहा है। उत्तर–पश्चिम में सिन्धु घाटी से प्रारम्भ होकर दक्षिण–पूर्व में ब्रह्मपुत्र घाटी तक हिमालय पर्वत श्रृंखला 2400 कि0मी0 लम्बी तथा 300 कि0मी0 चौड़ी है। उत्तराखण्ड राज्य मध्य हिमालय के भू–भाग में केन्द्रित है। भौगोलिक दृष्टि से यह राज्य 28043′45′′ उत्तरी अक्षांश से 31028′10′′ उत्तरी अक्षांश तथा 77035′5′′ पूर्वी देशान्तर से 8102′25′′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। राज्य का कुल क्षेत्रफल 53,483 वर्ग कि0मी0 है। कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 86.07 प्रतिशत पर्वतीय एवं 13.93 प्रतिशत मैदानी भाग है। राज्य के भूभाग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हिमालय पर्वत श्रृंखला का हिस्सा है जिसके कारण राज्य में अधिकतर पहाड़ी क्षेत्र है। मैदानी क्षेत्र राज्य के दक्षिणी मे स्थित है जो कृषि और अन्य गतिविधियों के लिए अधिक उपयुक्त है।

उत्तराखण्ड भारतीय गणतंत्र का 27 वां राज्य है। इसकी स्थापना 9 नवम्बर, 2000 ई0 को हुई। उत्तराखण्ड प्रशासनिक दृष्टि से गढ़वाल तथा कुमायूं दो मण्डलों में विभाजित है, जिनमें कुल 13 जनपदों को सम्मिलित किया गया है। इन जनपदों को चमोली, रुद्रप्रयाग, पिथौरागढ़, चम्पावत, बागेश्वर, अल्मोड़ा पूर्णतः पहाड़ी हैं, जबकि पौड़ी, उत्तरकाशी, टिहरी, नैनीताल, पहाड़ी एवं मैदानी संस्कृति तथा देहरादून, हरिद्वार और ऊधमसिंहनगर पूर्ण रूप से मैदानी संस्कृति से ओतप्रोत हैं। इसी विशिष्टता के कारण पर्वतीय भू–भाग में विकास राजनीति एवं पलायन का अध्ययन करने की आवश्यकता हुई। विकास और पलायन दोनों एक दूसरे से जुड़े हैं। माना जाता है कि जहां विकास है वहां पलायन कम है और जहां पलायन है वहां विकास कम है। इसी प्रकार से पहाड़ी भू–भाग से पलायन पूर्ण विकास न होने के कारण हो रहा है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रख कर प्रस्तुत समस्या का अध्ययन विषय के रूप में चयन किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन

अध्येयता का संज्ञान है कि उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय भू–भाग में विकास एवं पलायन विषय पर अभी तक अनेक संगठनों एवं शोधकर्ताओं द्वारा अध्ययन किया गया है। संगठनों द्वारा किये गये अध्ययन में उत्तराखण्ड में हो रहे पलायन के कारण, प्रभाव का अध्ययन किया है। इन्द्र मोहन पन्त एव प्रो0 कैलाश चन्द्र ने इन्टर नेशनल जनरल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जनरल में प्रकाशित शोध पर उत्तराखण्ड में पलायन की अवधारणा एवं पर्वतीय क्षेत्र में पलायन का अध्ययन किया है। गुरु प्रसाद थपलियाल ने भी उत्तराखण्ड प्रदेश में ग्रामीण जनसंख्या के पलायन का भौगोलिक अध्ययन किया है। आदि अध्ययन अध्येयताओं द्वारा उक्त विषय या उससे सम्बन्धित विषयों पर किया गया है। किन्तु सब ने अध्ययन अपने दृष्टिकोण एवं स्रोतों के माध्यम से किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा भी उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में विकास एवं पलायन को पृथक् दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है और अध्ययन को मौलिकता प्रदान की गई है। अध्ययन विषय की इसी मौलिकता एवं सार्थकता को ध्यान पर रख कर अध्येयता द्वारा उत्तराखण्ड पर्वतीय क्षेत्रों में विकास की राजनीति एवं पलायन का एक अध्ययन को शोध विषय के रूप में चयन किया है।

अध्ययन के मूल उद्देश्य

1. विकास की अवधारणा का संक्षेप में अध्ययन करना।
2. उत्तराखण्ड राज्य में समावेशी विकास की आवश्यकता एवं स्थिति का अवलोकन करना
3. पर्वतीय क्षेत्रों में विकास एवं विकास नीतियों का अध्ययन करना।
4. पर्वतीय क्षेत्रों में पलायन के कारण, प्रभाव एवं समाधान का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. विकास की अवधराणा के सम्बन्ध में सभी का मत एक जैसा नही है।
2. उत्तराखण्ड राज्य में समावेशी विकास की आवश्यकता है।
3. पर्वतीय क्षेत्रों के लिए पृथक से विकास एवं विकास नीति की अनिवर्यता है।
4. पर्वतीय क्षेत्रों में पलायन के कारण, प्रभाव एवं समाधानों का अध्ययन विकास के लिए आवश्यक हैं।

अनुसन्धान प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु सामाजिक अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धति को प्रयोग में लाया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीय स्रोतों पर आधारित है। इस शोध पत्र में अनुभव आधारित ज्ञान का अवश्यकतानुसार समायोजन भी किया गया है तथा उत्तराखण्ड पलायन आयोग के द्वारा समय–समय पर प्रकाशित रिपोर्ट एवं आंकड़ों को भी अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

विश्लेषण, व्याख्या, परिणाम और सुझाव

उत्तराखण्ड का अधिकांश भूखण्ड पर्वतीय है। जिस कारण मैदानी भूखण्ड की ओर यहां के लोग पलायन करते रहे हैं। यह प्रवास न केवल आर्थिक कारणों से प्रेरित है, बल्कि सामाजिक, शैक्षणिक,

प्राकृतिक आपदाओं और अन्य कई समस्याओं से भी जुड़ा है। यह प्रवृत्ति जहां एक ओर अवसरों की तलाश को दर्शाती है, वहीं दूसरी ओर पर्वतीय क्षेत्रों की समस्याओं को उजागर भी करती है। उत्तराखंड राज्य बने ढाई दशक से अधिक हो चुका है, लेकिन पहाड़ों से पलायन लगातार बढ़ रहा है। सरकारी प्रयासों के बावजूद, पर्वतीय भू–भाग लगातार वीरान हो रहे हैं, खेती, मकान बंजर रही है और संस्कृति सिमट रही है। यह केवल आर्थिक संकट नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय संकट भी है।

उत्तराखण्ड में पर्वतीय क्षेत्रों से हो रहा पलायन एक गंभीर समस्या का रूप धारण कर रहा है। 2001 तथा 2011 की जनगणना के आकड़ों की तुलना में राज्य के पर्वतीय ज़िलों मे जनसंख्या वृद्धि बहुत धीमी गति से देखी जा रही है। 2001 और 2011 के बीच अल्मोड़ा तथा पौड़ी गढ़वाल जनपदों की आबादी में गिरावट राज्य के कई पहाड़ी क्षेत्रों से लोगों के बड़े पैमाने पर पलायन की ओर इशारा करती है। पलायन की गति ऐसी है कि ग्रामों की आबादी दो अंको में रह गयी है। उत्तराखंड के ग्रामीण विकास एवं पलायन रोकथाम आयोग के अनुसार 2018 से 2022 तक राज्य के विभिन्न हिस्सों, खासकर पहाड़ी गांवों से कुल 3.3 लाख लोगों ने पलायन किया और लगभग 700 मवेसी खाली हुए हैं। 2007 और 2017 के बीच लगभग 3.83 लाख से अधिक लोगों ने अपना घर छोड़ दिया है। साल 2011 के बाद से राज्य से बाहर प्रवास करने वाले कुल 5,02,707 लोगों में से, सबसे अधिक 89,830 लोग टिहरी जिले से पलायन कर गए। इसके बाद पौड़ी में 73072, अल्मोडा से 69818, चमोली से 46290, पिथौरागढ से 41669, रुद्रप्रयाग से 30570, बागेश्वर से 29300, देहरादून से 28,583, चंपावत से 28218, नैनीताल से 25774, उत्तरकाशी से 22620, हरिद्वार से कुल 9312 लोग और उधमसिंह नगर से 7016 पलायन कर चुके हैं।

राज्य के मैदानी इलाकों की ओर सबसे अधिक पलायन युवाओं का हुआ है। आंकड़ों से पता चलता है कि युवाओं में 29 फीसद 25 या उससे कम उम्र के, 42 फीसदी 26 से 35 के बीच के और 29 फीसदी 35 उम्र से अधिक के युवा पलायन कर रहे हैं। युवा हो या समाज का अन्य वर्ग पहाड़ी भू–भाग से पलायन कर रहा है तो सिर्फ आजीविका और भौगोलिक विकटता के कारण है। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य कारण भी हैं।

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन कारण

उत्तराखण्ड पहाड़ी भू–भाग से तेजी से हो रहा पर्वतीय क्षेत्र से मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन सिर्फ शहरी जीवन की सुविधाएं पाने की आकांक्षा नहीं है, बल्कि इसके मूल में आर्थिक और सामाजिक कारण भी हैं। यह प्रवृत्ति दर्शाती है कि पहाड़ों की समस्याएं ही लोगों को शहर की ओर धकेल रही हैं। स्कूली शिक्षा में व्यावहारिकता व स्थानीयता की कमी। पर्वतीय क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव के कारण बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए शहरों का रुख करना पड़ता है, जिससे धीरे–धीरे पूरे परिवार का शहरों की ओर झुकाव हो जाता है। पहाड़ों में जातीय भेदभाव, दमन और सामाजिक अन्याय के कारण लोग बेहतर जीवन की तलाश में पलायन करते हैं। आंतरिक अशन्ति (चोरी–डकैती), पहाड़ों में लड़ाई–झगड़े, शादी, तलाक, पारिवारिक विवाद, घरेलू हिंसा, आपसी तंत्र मंत्र व जादू टोने आदि अनेक कारण हैं जो पहाड़ी ग्रामीण लोगों को पलायन करने के लिए विवश कर रहे हैं। पहाड़ों के लोग सोचते हैं कि शहरों में सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं, परिवहन, संचार, मनोरंजन, रोज़गार और सरल व सहज जीवन शैली आदि की सोच पलायन को बढ़ावा देती है।

यहां कृषि पर निर्भरता अधिक है, लेकिन कृषि आय अनिश्चित है। पहाड़ों में खेती योग्य भूमि कम है, जो है वह भी वर्षा पर निर्भर, सीढ़ीनुमा, ऊबड़–खाबड़, और संवेदनशील है। खेती के लिए जल–संकट की भी तीव्रता है। इसके बावजूद भी लोग खेती करते हैं, किन्तु जंगली जानवरों का आतंक इतना बड़ा गया है कि वह सारी फसल को नुकसान पहुंचा रहे हैं जिससे लोग पहाड़ छोड़कर मैदानों की ओर पलायन कर रहे हैं। सिंचाई की असुविधा, मौसम की अनिश्चितता और उपज के कम दाम के चलते किसानों का जीवन कठिन होता है। वनों की क्षति अग्नि से नुकसान, कटाई, जल संरक्षण की उपेक्षा और बढ़ती जनसंख्या इस संकट को और अधिक गहरा रहे है। जल योजना हो या सड़क निर्माण, कार्यों में भ्रष्टाचार व निष्क्रियता आम बात है। कागजों में योजनाएँ बनती तो हैं, और वास्तविकता यह है कि वह जमीनी क्रियान्वयन पर कमजोर हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक जल स्रोत सूखते जा रहे हैं। ग्लेशियर पिघल रहे हैं। सूखा, बाढ़, भूकंप आदि से परेशान होकर लोग अपने पहाड़ छोड़ने को मजबूर हो रहे हैं। उद्योग, सर्विस सेक्टर या स्वरोजगार के अवसर ना के बराबर हैं, जिससे लोगों को रोज़गार के लिए शहरों की ओर रुख करना पड़ता है। सड़क, कारखाने और अन्य विकास कार्यों के लिए कृषि भूमि का अधिग्रहण पहाड़ों को खाली कर रहा है। आर्थिक अवसरों की कमी। सरकारी नौकरियों की सीमित संख्या और मुख्यतः शिक्षा व सेना जैसे दो ही क्षेत्रों में रोजगार के अवसर केंद्रित हैं। आपदाओं (जैसे 2013 की केदारनाथ त्रासदी) के बाद भी पूर्ण पुनर्वास नहीं। यहां जीवन निर्वाह की विकट समस्या के फलस्वरूप विकास के आभाव में पलायन जारी है।

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में पलायन का प्रभाव

यद्यपि पलायन के प्रभावों का अध्ययन करना बहुत कठिन है, परन्तु मुख्य रूप से पलायन के प्रभावों को दो शीर्षकों में रख सकते हैं।

- पलायन का सकारात्मक प्रभाव
- पलायन का नकारात्मक प्रभाव

पलायन का सकारात्मक प्रभाव

पर्वतीय क्षेत्रों से जब व्यक्ति प्रवासी होकर मैदानी क्षेत्र में जाता है, तो पहाड़ी क्षेत्र की भूमि पर जनसंख्या का भार घटता है और भूमि का अपखण्डन व उपविभाजन कम हो जाता है। पहाड़ों से भूमि दबाव को घटाता है। एक देश के अन्तर्गत जब व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है तो वह दूसरे की संस्कृति, सामाजिक तौर तरीके, आर्थिक गतिविधियों से परिचित होता है, वहां की समस्या समझता है और उसमें एकता की भावना विकसित होती है। वस्तुतः पलायन से मनुष्य में मनुष्यत्व, भाई–चारे आदि साकारात्मक गुणों एवं भावनाओं में वृद्धि होती है। नागरिकता तथा उसके द्वारा प्राप्त समस्त लाभ पलायन के ही द्वारा प्राप्त होता है। मैदानी क्षेत्रों में पहाड़ी क्षेत्रों की अपेक्षा परिवहन एवं संचार, शिक्षा, मनोरंजन, चिकित्सा आदि की सुविधायें अधिक होती है, किन्तु शहरी क्षेत्रों में देश–विदेश के व्यक्तियों की शैक्षिणिक प्रतिभा, संस्कृति, साहित्य, कला आदि के क्षेत्र में उपलब्धियों का पूरा–पूरा लाभ प्राप्त हो जाता है। तकनीकी शिक्षा, प्रशिक्षण तथा शोध आदि का लाभ शहर में ही प्राप्त होता है। पलायन जनांकिकी दृष्किोण से भी लाभकारी होता है। इससे जन्म एवं मृत्यु दर में कमी आती है तथा स्वास्थ्य सुविधाओं आदि की सुचारू रूप से उपलब्धता के कारण जीवन स्तर ऊंचा होता है। पलायन जहां सामाजिक एकता में वृद्धि करता है, वहीं उससे सांस्कृतिक विस्तार भी होता है। इसी प्रकार के प्रवास से राजनीतिक जागरुकता आती है तथा प्रजातंत्र के सफल होने के अच्छे अवसर उत्पन्न होते हैं। आज पहाड़ों में

सभ्य समाज, शिक्षित समाज, जो दृष्टव्य हो रहा है वह पलायन का ही एक हिस्सा कहा जाय तो इसमें कोई अतिशोक्ति नहीं होगी। यही नहीं पलायनकर्ता अपने साथ मैदानों से जो वस्तु लेकर आता है वह गांव वालों के लिए एक प्रेरणा का कार्य करती हैं। जिससे वे विकास की ओर गतिमान होने का प्रयास करते हैं।

पलायन का नाकारात्मक प्रभाव

पलायन से समाज में वर्ग भेद को जन्म मिलता है। प्रायः प्रवासियों व स्थानीय व्यक्तियों में सामाजिक, सांस्कृतिक अलगाव बना रहता है और समाज के अन्दर ही समाज बनने लगते हैं। इन समाजों में परस्पर संघर्ष एवं तनाव का वातावरण उत्पन्न है। जातीयता, प्रान्तीयता, भाषा–विवाद आदि की भी उत्पत्ति इसी कारण होती है। पलायन के कारण मैदानी क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व में वृद्धि होती है, जिसके कारण आवास, स्वच्छता आदि की समस्या धीरे–धीरे शहरों में भी उत्पन्न होने लगती है। प्रायः मैदानी भागों की ओर पलायन का मुख्य उद्देश्य रोजगार प्राप्त करना होता है। मैदानी भाग होने के कारण वहां उद्योगों, यातायात एवं संचार निर्माण कार्यों का विकास अधिक होता है। इन विकास कार्यक्रमों के कारण यद्यपि मैदानी भागों में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, परन्तु ये अवसर सीमित होते हैं। अधिक मात्रा में निरंतर आने वाले ग्रामीण व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराना संभव नहीं हो पाता। फलतः इन क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या गंभीर हो जाती है। मैदानी क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ने से बस्तियों का विस्तार होता है, बेरोजगारी, ट्रैफिक, प्रदूषण और संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। पहाड़ों में युवा आबादी की कमी हो जाती है, खेती और अन्य ग्रामीण व्यवसाय प्रभावित होते हैं। प्रवास से संयुक्त परिवारों का विघटन होता है, पारिवारिक सम्बन्ध कमजोर होते हैं। इसके विपरीत पहाड़ी लोग मैदानों की संस्कृति को अपनाने लगते हैं, जिससे पारंपरिक लोक संस्कृतियाँ विलुप्त हो रही हैं। संस्कार खत्म हो रहे हैं। त्योहार, परंपराएँ, लोककला, गीत–संगीत सब धीरे–धीरे सिमटते चले जा रहे हैं।

जैविक असंतुलन पैदा हो रहा है। जल स्रोत सूखने लगे हैं, जंगलों के क्षरण और वर्षा चक्र में असंतुलन से संपूर्ण पारिस्थितिकी पर खतरा मंडरा रहा है। जब पुरुष पलायन करते हैं, तब खेती से लेकर बच्चों की देखरेख तक की पूरी जिम्मेदारी महिलाओं पर आ जाती है। प्रवास के चलते अनेक गांवों में महिलाएं अकेली रह जाती हैं। सभी घरेलू कार्यो को महिलाएं अकेला करती हैं जिससे उनकी सुरक्षा का प्रश्न खडा उठ जाता है। साथ ही अकेले होने के कारण पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के कारण वह अपनी शिक्षा को भी पूर्ण नहीं कर पाती है।

उत्तराखण्ड राज्य की बड़ी सीमा चीन व नेपाल से भी हुई जो कि सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। सेना की सहायता व क्षेत्रीय भौगोलिक स्थिति की जानकारी व उच्च हिमालयी क्षेत्रों में अनुकूलन में यहां के स्थानीय निवासियों की भूमिका सदा अविस्मरणीय रही है। जब भी सीमा पर विदेशी आक्रमणकारियों ने घुसपैठ करने की कोशिश की है, तो यहां के स्थानीय निवासियों ने सेना की मदद कर विदेशी आक्रमणों को निष्फल बनाने में अपना अमूल्य समय व योगदान दिया है। वर्तमान स्थिति यह है कि कई सीमांत गांव आज खाली होने की कगार पर हैं। इससे देश को नुकसान हो रहा है। युवाओं का सेना में जाने का रुझान भी घट रहा है, क्योंकि वह पहाड़ छोड़ रहे हैं। देश की सीमाएँ कमजोर हो गई हैं। क्योंकि यहां का युवा मैदानी भागों में एक बार जाने से पुनः वापस नही आता है। फलतः सुरक्षा और सामरिक दृष्टिकोण से भी खतरे उत्पन्न हो रहे हैं।

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन को रोकने का समाधान एवं सुझाव

पर्वतीय क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसर बढ़ाए जाएं व कृषि और कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवित किया जाए। बागवानी, जड़ी–बूटी, पर्यटन, हस्तशिल्प और स्थानीय उद्यमों को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है। डिजिटल इंडिया और आत्मनिर्भर भारत, उद्यमिता, मनरेगा, स्टार्टअप इंडिया जैसे अभियानों को पहाड़ी क्षेत्रों तक पहुँचाया जाए। समाज में समानता और न्याय की भावना विकसित की जाए। युवाओं को पहाड़ी स्तर पर स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षित किया जाए। बुनियादी ढ़ांचे में सुधार किया जाय, जैसे हर पहाड़ी गाँव तक सड़क, बिजली, पानी और इंटरनेट की पहुँच सुनिश्चित की जाय। पहाड़–केंद्रित शिक्षा और स्वास्थ्य नीति की अनिवार्यता की जानी चाहिए। स्थानीय जरूरतों पर आधारित पाठ्यक्रम और स्वास्थ्य सेवाओं का विकास अनिवार्य है। संस्कृति और पहचान का संरक्षण सहित स्थानीय त्योहारों, गीतों, नृत्यों और लोक कलाओं को पुनर्जीवन करने की आवश्यकता है। जल–संरक्षण और वनों का संवर्द्धन किय जाय। पारंपरिक जलस्रोतों को पुनर्जीवित करना और सामुदायिक वन प्रबंधन को मजबूत करना है। सरकारी योजनाओं का यथार्थ रूप में धरातल पर क्रियान्वित किया जाय। क्षेत्रीय विषमता को दूर करने के लिए पर्वतीय स्मार्ट सिटी जैसी अवधारणाओं पर ध्यान देने की अवश्यकता है। अन्ध विश्वास, रूढिवादिता को खत्म किया जाय। जादू–टोना आदि कुरीतियों का नियन्त्रित करने की आवश्यकता है तथा पहाड़ के लिए ठोस विकास नीति की अनिवार्यता है।

निष्कर्ष

विकास बहु–आयामी प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें केवल आर्थिक बढ़त नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा, पर्यावरणीय संतुलन और सामाजिक सहभागिता भी आवश्यकता हैं। विकास वह है जिसमें सभी वर्गों की भागीदारी हो, भविष्य की पीढ़ियों को ध्यान में रखकर योजनाएँ बनाई जाएँ और स्थानीय आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जाए। गांवों से शहरों की ओर हो रहा प्रवास विकास की विकृत दिशा को दर्शाता है। प्रवास को रोकने के लिए गांवों को भी जीवनयापन, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने होगे। गांवों को इतना सशक्त बनाया जाए कि लोग गांव में ही आत्मनिर्भर भविष्य सुनिश्चित कर सकें। सरकार से लेकर व्यक्तियों ने विकास के सम्बन्ध में अपने–अपने प्रयास किये हैं किन्तु धरातली सार्थकता के अभाव में स्थिति वही की वही हैं। नेहरू मॉडल ने भारत को औद्योगिक राष्ट्र की ओर अग्रसर किया, परंतु गरीबी और असमानता की समस्याओं को पूरी तरह हल नहीं कर सका। गांधीवादी सोच स्थानीय अर्थव्यवस्था, समावेशी विकास और स्थायित्व की ओर इंगित करती है, लेकिन आधुनिक आर्थिक चुनौतियों से जूझने में सीमित है। भारतीय योजना प्रणाली की द्वितीय पंचवर्षीय योजना से लेकर पाँचवीं योजना तक की रणनीति में भारी उद्योगों पर बल, नियंत्रित औद्योगीकरण, आत्मनिर्भरता, और संवेदनशीलता के साथ विकास की अवधारणा देखी जाती है।

प्रवास जब असंतुलित हो जाता है, तो यह समाज और देश दोनों के लिए समस्याएँ उत्पन्न करता है। मैदानी विकास की गति को संतुलित करने के लिए पर्वतीय क्षेत्रों का विकास की दृष्टिकोण से सशक्तिकरण ज़रूरी है। वहाँ रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी सुविधाओं का विकास हो साथ ही, लोकसंस्कृति और सीमावर्ती गाँवों के संरक्षण की भी आवश्यकता है। उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्र केवल भूमि या पहाड़ नहीं, बल्कि संस्कृति, परंपरा

और राष्ट्रीय सुरक्षा का आधार हैं। इन पहाड़ों से पलायन सिर्फ लोगों का नहीं, बल्कि राज्य की आत्मा का पलायन है। यदि आज भी सरकार और समाज ने सजग होकर ठोस कार्य नहीं किए, तो यह संकट केवल "पलायन" नहीं, एक स्थायी विनाश की ओर संकेत करेगा जो भविष्य में एक बहुत बड़ी चुनौती का रूप धारण कर लेगा। उत्तराखंड राज्य बनने के बाद कई क्षेत्रों में बुनियादी सुधार हुए हैं, परंतु विकास की गति असंतुलित रही है। सामाजिक न्याय, रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, और सड़कों जैसे क्षेत्रों में अभी भी गहरी चुनौतियाँ मौजूद हैं। यदि सरकार ग्राम–केंद्रित विकास को प्राथमिकता देकर योजनाओं का क्रियान्वयन करती है, तो राज्य का समावेशी विकास संभव है और इसी कार्य की नीव पलायन पर रोक लगायेगी।

सन्दर्भ

1. मामोरिया चतुर्भुज. भारत का वृहद भूगोल. आगराः साहित्य भवन पब्लिकेशनय 2001.
2. विनसर पब्लिशिंग. उत्तराखण्ड इयर बुक 2011. देहरादूनः विनसर पब्लिशिंगय 2011.
3. विमल गंगा प्रसाद. हिमालय का अर्थ, हिमालय निवासी तथा निसर्ग. हिमालय सेवा संघ पत्रिका. 1990 सितम्बरय 14ः ख्स्थान – राजघाट, नई दिल्ली,.
4. गड़ाकोटी नारायण सिंह. उत्तरांचल सामान्य ज्ञान परिचय. आगराः उपकार प्रकाशनय 2002.
5. चमोला अनिल. चमोली वर्ष 1987. गोपेश्वरः सूचना विभाग, जनपद चमोलीय 1980.
6. डबराल शिव प्रसाद. उत्तराखण्ड का इतिहास. दुगड्डा, गढ़वालः वीर गाथा प्रकाशनय 1925. भाग–1.
7. सांस्कृत्यायन राहुल. कुमायूं. वाराणसीः काशी ज्ञान मण्डल लिमिटेडय 1958.
8. नैथानी शिव प्रसाद, हरिमोहन. उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य और पर्यटन. श्रीनगर गढ़वालः सरस्वती व हरिमोहन पब्लिकेशनय 1982.
9. एटकिंसन ईटी. हिमालयन गजेटियर भाग–2. दिल्लीः कोस्मों पब्लिशर्सय 1974. (मूल संस्करण 1882).
10. बहुगुणा मणीराम. गढ़राज्य शासन की यादें. टिहरीः कुसमुलता प्रकाशनय 1995.
11. बले जेएम. नैनीताल हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रेटिव एकाउन्ट. इलाहाबादः इलाहाबाद प्रेसय 1928.

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.